रिसर्च का विषय : ऋतुगेय राग एवं आधुनिक बंदिशों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रथम अध्याय

रागों का अर्थ एवं परिभाषा, रागों का वर्गीकरण, रागों का समय सिद्धांत एवं राग एवं ऋतु इत्यादि

१. रागों का अर्थ एवं परिभाषा

भारतीय संगीत पद्धति एकदम वैज्ञानिक नियमबद्ध एवं पूर्णतया राग पर अवलंबित हैं। राग रूपी दीपक के प्रकाश में हमारा संगीत सतत प्रकाशित हैं। स्वर तथा ताल किसी न किसी रूप में लगभग विश्व के सभी संगीत प्रणालियों में विद्यमान हैं, परंतु राग की अवधारणा भारतीय संगीत वांगमय की अपनी एक खास विशेषता हैं, जो इसे विश्व संगीत में सबसे अलग और उच्चतम स्थान दिलाता हैं।

राग शब्द मूलतः संस्कृत भाषा का हैं जिसका उद्गम 'रज्ज' धातु से हुआ हैं। 'रज्ज' धातु का प्रयोग रंगने के अर्थ में बताया गया हैं अतः राग का अर्थ हैं हमारे मन को अपने रंग में रंग लेना और यही राग का ध्येय भी हैं।

मानक हिन्दी कोश के अनुसार राग के कई अर्थ हैं जैसे

1) किसी की रंग से मुक्त करने की क्रिया या भाग/रंजित करना/रंगना

2) रंगने का पदार्थ या मशाला/रंग

3) लाल रंग लाल होने की अवस्था या भाव

4) लाली जो कपूर, कस्तूरी, चंदन आदि से बनाया जाता हैं

5) अंग राग

6) पैर में लगाने की अलता

7) किसी के प्रति होने वाला अनुराग या प्रेम

8) किसी अच्छी चीज के प्रति होने वाला अनुराग और उसे प्राप्त करने की इच्छा या कामना। अभिमत या प्रिय वस्तु पाने की अभिलाषा

9) मन में रहने वाली सुखद अनुभूति

10) खुबसुरती/सुन्दरता

11) क्रोध-गुस्सा

12) कष्ट/तकलीफ/ पीड़ा

13) इर्ष्या द्वेष/मत्सर

14) मन प्रसन्न करने की क्रिया/मनोरंजन

15) राजा

16) सूर्य

17) चन्द्रमा

18) संगीत के राग। [1]

इस प्रकार हम देखते हैं की राग के कई अर्थ हैं जिसका प्रयोग अधिकतर भिन्न-भिन्न अर्थो में होता है। संगीतशास्त्र में राग का प्रयोग सामान्य और विशेष दोनों अर्थों में हुआ हैं। सामान्य अर्थ में राग 'रंजकता' का द्योतक हैं और विशेष अर्थ में वह एक ऐसे नादमय व्यक्ति का द्योतक हैं जो स्वरमय और भावमय से समन्वित हैं। इन समन्वित व्यक्तित्व का विच्छेदन नहीं किया जा सकता तथा ये परस्परावलंबी भी हैं। प्रत्येक राग सुखप्रद होने के अर्थ में तो रंजक होता ही हैं, साथ ही उसका अपना एक वैशिष्ट्य भी होता हैं। इसी वैशिष्ट्य के कारण उसमें रंजकता का विशेष अर्थ यानी रंग देने की शक्ति का भी समन्वय पाया जाता हैं। भिन्न-भिन्न रागों की इस विशिष्ट रंजकता को प्रस्तुत करने में किस कलाकार की कितनी सफलता मिलती हैं, यह उसकी आजीवन साधना और तपस्या पर निर्भर हैं। अमूर्त भावों को स्वरों द्वारा मूर्त करना, प्रत्येक स्वर-मूर्ति का वैशिष्ट्य या स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रस्तुत करना, यह कोइ सामान्य विषय नही, अपितु कठोर तपस्या और साधना से ही यह विषय शक्ति प्राप्त की जा सकती हैं।

राग को स्वरों व वर्णों द्वारा सजाया जाता हैं। ये स्वर और वर्ण निर्धारित ढांचे के अन्तर्गत ही रहते हैं और इसकी बढ़त भी राग के व्यक्तित्व के अनुसार की जाती हैं। स्वरों व वर्णों के मेल से रंजकता उत्पन्न की जाती हैं। किसी भी स्वरावलि में यदि रंजक गुम न हो तो वह राग नहीं कहलाता। केवल स्वरों के उलट-पुलट कर देने से रागों का निर्माण नहीं होता। रंजकता का मापदंड सुसंस्कृत व सहृदय लोकों को रसमय करने की क्षमता ही हैं। राग की रंजकता का अर्थ यह हैं की वह ध्वनि समूह रसिकों के अपूर्व आनंद की पुष्टि करने वाला हो। वह अपने आसपास के वातावरण से हट कर राग के साथ तन्मय हो जाता हैं। राग का यही साक्षात्कार रसानुभूति हैं।

राग विशिष्ट ध्वनियों की एक रचना हैं। जिसकी आवृत्ति निर्धारित रहती हैं और उसका अपना एक व्यक्तित्व हैं। उदाहरणार्थ राग कल्याण की अपनी एक आकृति हैं तो राग केदार का अपना रूप। बंदिश सुनकर ही राग का रूप सामने प्रकट हो जाता हैं। यह रूप या आकृति परम्परा से निर्धिरित होता हैं तथा संगीतज्ञों की पीढ़ी दर पीढ़ी इसे सुरक्षित रखता हैं। राग के अन्तर्गत विभिन्न स्वरों का क्रम उसकी बढ़तें, इसका परस्पर संबंध, इसका अल्पत्व बहुत्व, इसका अंगभूत स्वर समूह सभी राग रूप को बनाने में सहायक होते हैं। अतः राग एक ऐसी स्वरावली हैं जिनकी आकृति अर्थात स्वर-वर्ण, आरोह-अवरोह, वादी-संवादी, अल्पत्व-बहुत्व, न्यास-उपन्यास इत्यादि निर्धारित हैं तथा यह आकृति सौंदर्यमयी भाव को प्रकट कर सहृदयों को रसानुभूति कराती हैं।

राग की तुलना विश्व के किसी भी जाति और संप्रदाय के लोगों में प्रचलित संगीत से नहीं कि जा सकती, यह सर्वदा भिन्न हैं। और यह निजी विशिष्ट गुण एवं स्वर-लालित्य के लिये अनुपम हैं। इसी आधार पर इसे प्राचीन मनीषियों के परिपक्व मस्तिष्क की अतुलनीय कल्पना शक्ति, अनुपम विचारधारा और अकृत्रिम सृजन शक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण माना गया हैं। [2]

'राग' भारतीय शिक्षा और सभ्यता का प्राचीनतम निदर्शन और संस्कति का एक अविच्छिन्न भावपूर्ण कलात्मक रूप हैं। यह शब्द परिभाषिक रूप से सर्वप्रथम मतंग की बृहद्देशी से प्राप्त होता हैं। इस ग्रंथ में मतंग ने कश्यप की परिभाषा को उद्धृत किया हैं।

''चतुर्णामपि वर्णनां यो रागः शोभनो भवेत्।

स सर्वो दृश्यते येषु तेन रागा इति स्मृतः।'' [3]

अर्थात जो स्वर स्थायी, आरोही, अवरोही और संचारी सभी वर्णों से सुशोभित हो वही राग कहे जाते हैं।

कश्यप की परिभाषा को ध्यान में रखकर मतंग ने भिन्न भिन्न रूप से राग को परिभाषित किया हैं।

स्वरवर्ण विशेषेण ध्वनिभेदेन वा पुनः।

रज्य सते येन मः कश्चित सरागः सम्मतः सताम्। [4]

अर्थात विशिष्ट स्वर वर्ण से अथवा ध्वनि भेद के द्वारा जो जन रंजनी में समर्थ हो वह राग हैं और

''यो ड पौ ध्वनि विशेषवस्तु स्वर वर्ण विशोषितः।

रज्ज को जन चित्तानां रज्ज च राग उदाडतः।'' [5]

अर्थात स्वरों और वर्णों से विभूषित वह ध्वनिविशेष राग हैं जीससे मनुष्यों के मन का रंजन होता हैं।

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर ही अन्य विद्वानों नें इसे भिन्न-भिन्न रूप से परिभाषित किया हैं। यथा शुभंकर के अनुसार जिनके द्वारा तीनों लोकों में विद्यमान प्राणियों के हृदय का रंजन होता हैं, भरत इत्यादि मुनियों ने उसे राग कहा हैं।

''यैस्तु चेतांसी रज्यन्ते जगत्त्त्रीतय वर्तिनाम।

ते रागा इति कथ्यन्ते मुनिभिर्भर्तादिभिः।'' [6]

संगीत समयसार में राग की परिभाषा इस प्रकार हैं-

''स्वर वर्णविशिष्टेन ध्वनि भेदनवा पुनः

रज्यते येन सच्चितम स रागः सम्मत सताम्।'' [7]

अर्थात् स्वर और वर्ण विशेष अथवा ध्वनिभेद से जिसके द्वारा सज्जनों के चित्त का रंजन हो वह राग हैं।

राजा कुंभा के अनुसार जिस ध्वनि की रचना में विचित्र वर्ण, अलंकार हो जिसमें ग्रहादि स्वरों का संदर्भ हो तथा जो रंजक हो वह राग हैं।

''विचित्रवर्णलंकारों विशेष (षो) यो द्वेनरिद।

ग्रहादि स्वर संदर्भ रज्जको राग उच्चेत।।'' [8]

मध्यकालिन ग्रंथकार श्रीकंठ के अनुसार सुन्दर ध्वनि विशेष जिसमें सभी वर्ण विराजित हैं तथा वह मानव के मन को रंजित करे दे राग हैं।

''रम्यध्वनि विशेषवस्तु सर्ववर्ण विराजितः।

सरागो गीयते तज्जैजगन्मानस रज्जकः।'' [9]

सोमनाथ के अनुसार राग इस प्रकार हैं -

''स्वरवर्ण भूषेतो यो ध्वनि भेदो रज्जकः स राग इति।'' [10]

पं व्यंकटमुखी के अनुसार जो स्वर प्रबन्ध श्रोताओं के मन का रंजन करते हैं उसे राग कहते हैं -

''रज्जयन्ति मनांसीति रागाः।'' [11]

वहीं पं.अहोबल ने रंजक स्वर संदर्भ को राग कहा हैं -

‘‘रंजकः स्वरसन्दर्भो राग इत्य मिलीयते।

सर्वेषामापि रागणांसमयोडत्र निरूप्यते।’’ [12]

आधुनिक विद्वान पंडित भातखंडे जी ने कहा हैं, एक विभिन्न स्वर समुदाय जो स्वर या वर्ण से सुशोभित होकर मनुष्यों के हृदयों का रंजन करता हैं उसे पंडितजन राग कहते हैं।

‘‘योडयं ध्वनि विशेषस्तु स्वरवर्ण विभूषितः।

रंजको जनचित्रानां स रागः कथितो बुधौ।’’ [13]

प्रो. बी. आर. देवधर ने मनोरंजक और रस पैदा करने वाले खास निगमाधिन स्वर समुदाय को ‘राग’ कहा हैं। [14]

श्रीधर परांजपे के अनुसार राग वह स्वर-रचना अथवा धुन हैं जिसमें स्वर-संवाद परस्पर सम्बन्ध रखते हैं और रंजकता के कारण एक विशिष्ट प्रभाव श्रोता के मन पर अंकित करते हैं। [15]

पन्नालाल मदन के अनुसार राग एक निश्चित स्वरसमूह हैं जो स्वर सप्तक में विचरता हुआ रंजकता उत्पन्न करता हैं, भावों को पूर्ण रूपेण अभिव्यक्त करता हैं और चित्त को प्रसन्नता प्रदान करता हैं जिसमें आरोह-अवरोह विद्यमान रहते हैं, जो वादी, संवादी और अनुवादी स्वरों की सहायता से अनेक प्रकार की स्वरलहरियां उत्पन्न करता हैं, जो कला के क्षेत्र में मूल रस का पूर्ण रूप धारण कर गीत और उसके अन्य अवयवों द्वारा रस का संचार करता हैं, जिसमें स्वर अपने तीव्रता, जाति और गुणों का प्रदर्शन भली-भांति कर सकता हैं। [16]

हिन्दी शब्द सागर के अनुसार षडज आदि स्वरों, उनके वर्णों और अंगों से युक्त मनोरंजन के लिये गाइ जाती हैं राग कहलाता हैं। [17]

मानक हिंदी कोष के अनुसार ‘वह विशिष्ट गान-प्रकार, जिसका स्वरूप स्वरों के उतार-चढ़ाव के विचार से निश्चित किया हुआ और ताल लय आदि विशिष्ट अंगों तथा उपांगों से युक्त होता हैं राग कहलाता हैं।’[18]

उपर्युक्त आचार्यों का मूल उद्देश्य यही रहा हैं की स्वर और वर्ण से युक्त ध्वनि विशेष और उसके भेद जो रंजकता उत्पन्न करे उसे ही राग की संज्ञा दी जाए। अर्थात विशेष प्रकार की ध्वनि जो स्वर और वर्ण से युक्त जनचित्त रंजन करने में समर्थ हो उस विशेष प्रकार की ध्वनि रचना को ही राग कहा जाता हैं।

उपर्युक्त गुणों सहित राग लक्षणों से युक्त चारु रचनाएं जिनके प्रदर्शन से ही जनचित्त रंजित और आनन्दित हो एसा स्वर सौन्दर्य ही राग नाम से प्रसिद्ध हैं। जिसकी तुलना विश्वके किसी भी जाति और संप्रदाय के लोगों में प्रचलित संगीत से सर्वदा भिन्न हैं। यह निजी विशिष्ट गुण एवं स्वर लालित्य के लिये अनुपम हैं। इसी आधार पर इसे प्राचीन मनीषियों के परिपक्व मस्तिष्क की अतुलनीय कल्पना शक्ति, अनुपम विचारधारा और अकृत्रिम सृजन शक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण माना गया हैं।

राग विशिष्ट ध्वनियों की एक रचना हैं। जिसकी आकृति निर्धारित रहती हैं और उसका अपना व्यक्तित्व हैं। उदाहरणार्थ राग कल्याण की अपनी शक्ल हैं, बिहाग का अपना एक रूप हैं, बागेश्वरी की अपनी आकृति हैं जिसकी बंदिश सुनकर ही राग का रूप सामने आ जाता हैं। यह रूप या आकृति परम्परा से निर्धारित होता हैं, तथा इसी को गायक वादकों की पीढ़ी दर पीढ़ी द्वारा सुरक्षित रखा जाता हैं। रागों के अन्तर्गत विभिन्न स्वरों का क्रम, उसकी बढ़तें, उनका परस्पर सम्बन्ध, उनका अल्पत्व-बहुत्व, उनका अंगभूत स्वर समूह सभी राग रूप को बनाने में सहायक होते हैं। राग के सभी स्वरों का षडज के साथ आत्मीय सम्बन्ध होता हैं। इस स्वर से अपने आप को सम्बन्धित रखने में ही उसकी सार्थकता हैं।

राग को स्वरों तथा वर्ण द्वारा सजाया जाता हैं। ये स्वर और वर्ण निर्धिरित ढांचे के अन्तर्गत ही होते हैं और उनकी बढ़त भी राग के व्यक्तित्व के अनुसार की जाती हैं। स्वरों तथा वर्णों के मेल से रंजकता उत्पन्न की जाती हे। किसी भी स्वरावली में यदि 'रंजक गुण' न हो तो वह राग नहीं कहलाता। केवल स्वरों के उलट पुलट कर देने से रागों का निर्माण नहीं होता। रंजकता माप दंड सुसंस्कृत तथा सहृदय लोगों को रसमय करने की क्षमता ही हैं। राग की रंजकता का अर्थ यह हैं की वह ध्वनि समूह सहृदय रसिकों के अपूर्व आनंद की पुष्टि करने वाला हों। वह अपने आसपास के वातावरण से हट कर राग के साथ तन्मय हो जाता हैं। राग का यही साक्षात्कार रसानुभूति हैं। अतः राग एक ऐसी स्वरावली हैं जिसकी आकृति निर्धारित हैं तथा यह आकृति सौंन्दर्यमयी भाव को प्रकट कर सहृदयों को रसानुभूत करती हैं।

1.2 रागों का वर्गीकरण

किसी भी ज्ञान को सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध रूप प्रदान करने के लिये वर्गीकरण की परम आवश्यकता होती हैं। अतः वर्गीकरण का यह नियम प्रकृति की अन्य वस्तुओं की तरह संगीत पर भी लागू होता हैं। वर्गीकरण विषय को शास्त्रीय लय प्रदान करने के साथ-साथ सुगमता भी प्रदान करता हैं। वर्गीकरण के मूल में समानता एवं विभिन्नता निहित रहती हैं। जब भारतीय संगीत का भी विपुल संख्या में विकास एवं विस्तार होने लगा तो वर्गीकरण की आवश्यकता महसूस की गई। फलस्वरूप सर्वप्रथम भरत के 'नाट्यशास्त्र' में कुछ विशेष स्वर-सन्निवेशों या सांगीतिक संज्ञाओं का वर्णन मिलता हैं। गायन-वादन में सुविधा की दृष्टि से भरत ने इन स्वर संज्ञाओं को अठारह जातियों में विभक्त कर दिया हैं। [19]

इससे यह कहा जा सकता हैं कि जातियां कदाचित स्वर-सन्निवेशों के वर्गीकरण की सर्वप्रथम अवस्था का प्रतीक हैं।

भरत के समय तक भारतीय संगीत जाति-प्रकृति पर ही आधारित था तथा उसी का विकसित और परिभाषित रूप हैं। कुछ समानता रखने वाले रागों के अलग और भिन्नता रखने वाले रागों के अलग-अलग वर्ग बना दिये गये हैं। रागों का यह वर्गीकरण प्राचीन काल से लेकर आज तक क्रमशः चलता ही आ रहा हैं। अतः राग वर्गीकरण को समझने के लिये प्राचीनकाल के राग-वर्गीकरण से लेकर अब तक के इतिहास को क्रमशः समझना होगा।

1.2.1 जातिगायन पद्धति

इस पद्धति के अनुसार जातियों के दो प्रकार होते हैं, शुद्ध और विकृत। [20]

सात जातियाँ शुद्ध और ग्यारह जातियाँ विकृत कहलाती थी। षडज-ग्राम से सात और मध्यम-ग्राम से ग्यारह जातियाँ उत्पन्न होती थी। राग गायन प्रचार में आने से पूर्व संपूर्ण संगीत ग्राम-मूर्छना जाति पर आधारित था। जातियों के वर्गीकरण के लिये ग्राम थे। जातियाँ ग्रामों में विभक्त थी। षाडजी, आर्षमी, धैवती तथा नैषादी ये चार शुद्ध तथा षडजौदीच्यवती, षडजकौशिकी, षडजमध्यमा ये तीन विकृत जातियाँ षडजग्राम के अन्तर्गत थी। मध्यम ग्राम के अनुसार गंधारी, मध्यमा, पंचमी ये तीन शुद्ध तथा रक्तगांधारी, गांधारोदिच्यवा, मध्यमोदिच्यवा, गांधारपंचमी, आन्ध्री, नंदयती, कार्मारवी, कौशिकी ये आठ विकृत जातियाँ थी। [21]

इस प्रकार जातियों के वर्गीकरण के लिये ग्रामों का प्रयोजन था। बहुत से ग्रंथकारों ने रागों का वर्गीकरण भी ग्रामों के अनुसार किया हैं। जिनमें प्रमुख हैं - मतंग, नान्यदेव, कल्लिनाथ इत्यादि।

1.2.2 रत्नाकरीय पद्धति

13वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में शारंगदेव द्वारा लिखित 'संगीत रत्नाकर' ग्रंथ प्राप्त होता हैं। संगीत में कई परिवर्तन हो रहे थे जिसके फलस्वरूप शारंगदेव ने रागों के वर्गीकरण की नवीन पद्धति को अपनाया।

दो ग्रामों से मूर्छनाओं की उत्पत्ति हुई। मुर्छना से जाति तथा जाति से ग्राम रागों की उत्पत्ति हुई। पं.शारंगदेव के अनुसार ग्राम रागों के पांच प्रकार माने जाते थे। ये पांच प्रकार के ग्राम पांच प्रकार कि जातियों पर आधारित थे।

''पच्चछा ग्रामरागाः स्युःपच्चगीतिसमाश्रयात्।'' [22]

ये पांच प्रकार की गायन की गायन शैलियाँ थी तथा इनकी अपनी-अपनी विशेषता थी। इन्होंने अपने समय के प्रचलित रागों का वर्गीकरण देशी और मार्गी रागों के अन्तर्गत किया हैं। मार्गी रागों के ग्राम राग, उप राग, शुद्ध राग, भाषा राग, विभाष राग और अन्तर भाष राग जैसे छः भेद बताये गये हैं और देशी रागों के रागांग, उपांग. भाषांग और क्रियांग जैसे चार भेदों में विभाजित कर दिये गये हैं। इसे रत्नाकर का दसविधि राग वर्गीकरण कहते हैं।

सारंगदेव ने 30 ग्राम रागों का भी उल्लेख किया हैं जिनमें शुद्ध गीति के मिश्रण से सात, भिन्न के आधार पर पाँच, गौड़ी के आधार से तीन, बैसरा से आठ और साधारणी से सात हैं। इस ग्रंथ में कुल 264 रागों का वर्णन दिया गया हैं। इन रागों का वर्गीकरण राग, उपराग आदि के आधार पर किया गया हैं।

1.2.3 शुद्ध, छायालग और संकिर्ण राग वर्गीकरण की पद्धति

संगीत मकरंद में इस वर्गीकरण के बारे में इस प्रकार कहा गया हैं -

''यथादृयुवक्रेमणैव रागः शुद्ध उदाहतः
उपक्रम्य यथा रागो मेलनं, सममिश्रकम्
पुनस्तन्मागगमकं रागरंगः प्रकीर्तितिः
संकीर्ण राग मिश्राणां रागः संकीर्ण उच्चयते।'' [23]

इनके अनुसार राग के तीन भेद हैं जिन्हे शुद्ध छायालग तथा संकीर्ण कहते हैं। शुद्ध राग वे हैं जिन्हें पूर्णतया शास्त्रोक्त रीति से गाने से आनन्द प्राप्त होता हैं। छायालग रागों में दो रागों का मिश्रण होकर रंजन होता हैं। संकीर्ण राग में शुद्ध तथा छायालग इन दोनों रागों का मिश्रण होकर आनंद प्राप्त होता हैं।

1.2.4 मेल - पद्धति

कविवर लोचन कृत राग तरंगिणी में बारह मेलों का उल्लेख किया गया हैं। [24]

भैरवी, तोड़ी, गौरी, कर्गाट, केदार, यमन, सारंग, मेघ, पूर्वी, धनाश्री, मुखारी तथा दीपक इन्हीं मेलों में उसे समय के प्रचलित रागों को इन्होंने वर्गीकृत किया हैं।

रामामात्य कृत स्वरमेल कलानिधि में 20 मेलों का वर्णन किया गया हैं। [25] श्री, हिंडोल, मालवगौड़, मुखारी, शुद्ध रामक्रिया, सारंगनाद, देक्षासी, शुद्धनाद, कन्नडगौल, अहीरी, नादरामकी, शुद्धवराली, रीतिगैल, बसंत भैरवी, केदारगैल, सामबराली, हिनुनी, कांभोजी, सामन्त रेवगुप्ति।

पुन्डरीक विदुल कृत सद्रगचन्द्रोदय में 19 मेलों का वर्णन इस प्रकार हैं - मुखारी, मालवगौड़, केदार, हिजजे, हमीरनाद, कामोद, तोड़ी, आमीरी, शुद्धवराटी, शुद्धरामक्रिया, सारंग कल्याण, हिन्डोल, नन्दरामक्रिया, श्री शुद्धनाद, देशाक्षी तथा कर्णाटी गौड़।

व्यंकटमुखी कृत चतुर्दन्डप्रकाशिका में 19 मेलों का वर्णन किया गया हैं। [26] भूपाली, बसंत, भैरवी, सामवराली, मुखारी, गौल, भैरवी, अहीरी, हेज्जुजी, श्री शंकराभरण, कांमोजी, देशाक्षी, सामन्त, शुद्धवरली, पन्तुवरली नाद, शुद्ध - राम - क्रिया, सिंहस्व तथा कल्याणी गौहम। इसके अतिरिक्त इन्होंनें 72 तथा हिन्दुस्तानी पद्धति के आचार्यों के 32 मेलों का निर्माण किया हैं। मेलों के जनक और उनसे उत्पन्न रागों को जन्य माना हैं।

1.2.5 राग-रागिनी पद्धति

‘‘राग’’ और रागिनी शब्दार्थ की दृष्टि से भी क्रमशः पुरुष और स्त्रीवाचक हैं। रागों की प्रकृति के अनुसार ही भावों की सृष्टि करना भारतीय राग संगीत की विशेषता रही हैं। प्राचीन राग-रागिनीयों के जो चित्र मिलते हैं उनसे हीं अनुमान लगाया जा सकता हैं कि यह पद्धति उत्तर भारतीय संगीत में कितनी लोकप्रिय रही होगी। चित्रों में राग-रागिनी के चित्रण के साथ ही उनके ध्यान भी बताए गए हैं और उनके स्वरूप का भी वर्णन देखने को मिलता हैं। सर्वप्रथम राग-रागिनी पद्धति में पुरुष राग और स्त्री रागिनियों की कल्पना की गई, तत्पश्चात रागों की संख्या बढ़ जाने पर उन रागों में पुत्र और पुत्र-वधु रागों का भी वर्णन मिलता हैं।

रागों के इन पारिवारिक वर्गीकरण का सुत्रपात नारद के मध्ययुगीन ग्रंथ ‘संगीत मकरंद’ से माना गया हैं। इसमें रागों का वर्गीकरण पुरुष, स्त्री तथा नपुंसक रागों में किया गया हैं। इसमें 6 राग मुख्य माने गये हैं और प्रत्येक की 62 रागिनियाँ मानी गइ हैं। [27] इस मत के सम्बन्ध में निम्न मत प्रचलित हैं –

1.2.5.1 शिवमत

इस मत के अनुसार 6 रागों और 36 रागिनियों को स्वीकार किया गया है –

रागों के नाम	रागिनियों के नाम
1. श्री	मालश्री, गौरी, केदार, त्रिवेणी, पहाडिका, मधुमानवी
2. बसंत	ललिता, हिन्दोली, बरारी, तोडिका, देवगिरी, देशी
3. भैरव	सौंघवी, बंगाली, गुणकिरी, रामकिरी, गुर्जर भैरवी
4. पंचम	कर्णाटी, भूपाली, विभाष, षट्मंजरी, मालवी, नटद्दंसिका
5. बृहन्नाट	आभारी, कल्याणी, कामोदी, नंदहविर, सारंगी नाटिका
6. मेघ	सावेरी, सोरठी, मल्लारी, हरश्रृंगार, गांधारी, कौशिकी

1.2.5.2 कल्लिनाथ मत

इस मत में भी 6 ही मुख्य राग है जो ठीक शिवमत की भाँति ही है। परन्तु इन दोनों मतों में रागिनियाँ के नाम में मतभेद है।

1.2.5.3 भरत मत

इस मत के अनुसार मुख्य राग तो 6 ही है परन्तु प्रत्येक राग की स्त्रीयां पाँच-पाँच है। मुख्य राग भैरव मालकौस, हिन्डोल, दीपक, श्री और मेघ है।

पटना के अहमद रजा ने अपने समय की प्रचलित राग रागिनियों पुत्र राग और पुत्रवधु पद्धति की तथा राग-रागिनी में आए चार अन्य प्रमुख मतों - सोमेश्वर मत, भरत मत, कल्लिनाथ मत और हनुमत मत की कडी आलोचना की और अपनी पुस्तक 'नगमातेआराफी' में अपने मतानुसार भैरव, मालकौस, हिंडोल, श्री, मेघ तथा नट में 6 पुरुष राग तथा प्रत्येक राग से 6-6 रागिनियाँ उत्पन्न की। रजा साहब के 6 राग छत्तीस रागिनियाँ बहुत समय तक प्रचलित रही।

सोलहवी शताब्दि के उत्तरार्ध में श्री कंठ की 'रस कौमुदी' में मेल पद्धति और राग-रागिनी पद्धति का समन्वय करने का प्रयास किया गया। इन्होंने ग्यारह मेलों के अन्तर्गत तेइस पुरुष राग और पन्द्रह स्त्री रागिनी कही है।

इस प्रकार हम देखते है कि विभिन्न विद्वानोंने अपने-अपने मतानुसार भिन्न-भिन्न प्रकार से राग-रागिनी वर्गीकरण किया है। राग-रागिनी पद्धति बहुत समय तक प्रचलित रही। खास तौर से मुस्लिम शासन-

काल तक तो राग-रागिनी पद्धति खुब प्रचलित और प्रसिद्ध हुइ तथा सर्वसामान्य रही। परन्तु प्रत्येक कला में समयानुसार परिवर्तन होते है अतः संगीतकला में भी समय के बदलते परिवेश में परिवर्तन शुरू हो गया।

इस पद्धति में कुछ दोष अवश्य है, जिनके कारण ही आज इसका स्वरूप धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा है। हालांकि राग-रागिनी पद्धति द्वारा अनुभव होने वाले भावों से कभी इनकार नहीं किया जा सकता। इसके कुछ दोष इस प्रकार है जैसे - भैरवी रागिनी को भैरव की स्त्री या रागिनी कहा है। केवल नामवाचक संज्ञा से ही किसी रागिनी को किसी राग के अश्रित कहा जा सकता है। इसी तरह के उदाहरण और भी बहुत से रागों में मिलते है जिनका आपस में किसी तरह का सम्बन्ध नहीं है।

1.2.6 थाट राग पद्धति

थाट राग पद्धति के प्रतिपादक पं.विष्णुनारायण भातखंडे ने 'अभिनव राग मंजरी' [28] ग्रंथ में दक्षिणी मेलाधार अर्थात व्यंकटमुखी की बहत्तर मेलों वाली पद्धति का अनुकरण करते हुए इस दस थाट वाली पद्धति का निर्माण किया और उसमें सभी रागों का विभाजन किया। ये दस थाट निम्नवत हैः -

1.बिलावल, 2. काफी, 3. भैरवी, 4. कल्याण, 5. खमाज, 6. आसावरी, 7. भेरव, 8.पूर्वी, 9. मारवा, 10 तोडी

थाट सितादि वाद्य का पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ सप्तक बदलने वाला के रूप में समझा जा सकता है। सितार वादन काल में किस थाट से परदे मिलाने है, अब कौन सा थाट बदलना है, थाट अचल है या चल आदि भाषा प्रयुक्त होती है। बिलावल स्वरावली को मूर्छना द्वारा बदलते रहने से 'सा' स्वर की मूर्छना द्वारा उत्पन्न स्वारवली बिलावल 'रे' स्वर की मूर्छना से काफी, 'म' स्वर की मूर्छना से भैरवी, 'ग' स्वर की मूर्छना से कल्याण, 'प' स्वर की मूर्छना से खमाज, 'ध' स्वर की मूर्छना से आसावरी, कोमल 'रे', 'ध' स्वर के सप्तक में शुद्ध 'म' स्वर लगाने से भैरव, 'म' तिव्र से पूर्वी, 'रे' कोमल, 'म' तिव्र तथा शेष शुद्ध स्वरयुक्त स्वरावली मारवा और 'रे' 'ग' 'ध' कोमल तथा 'म' तिव्र स्वर से तोडी नामक स्वरावलीयां प्राप्त हुइ और इन्हें थाट कहा गया। इसके पश्चात लगभग दसों प्राचीन एवं अप्रचलित रागों का वर्गीकरण इन्हीं दस थाटों के अन्तर्गत कर दिया गया। पं. भातखंडे जी ने थाट की व्याख्या करते हुए कहा है कि ''स्वरों का वह समूह जो राग उत्पन्न करने में संपूर्ण है थाट कहा जाता है।''[29] उन्होंने थाट निर्माण हेतु कुछ नियम भी कहे थे जिनमें निम्न उल्लेखनीय है -

1. थाट में सातों स्वर क्रम में होने चाहिए।
2. थाट में केवल आरोह होना चाहिए।
3. थाट कभी गाया नहीं जाता। अतः इसमें रंजकता का होना जरूरी नहीं है।

4. थाट में एक ही स्वर के दो रूप अर्थात शुद्ध कोमल, शुद्ध तीव्र इकठ्ठे नहीं आ सकते।
5. थाट को उसमें से उत्पन्न किसी प्रसिद्ध राग के नाम से पुकारा जाए।

जनक थाटों में पं.भातखंडे ने केवल सप्त स्वरों का ही प्रयोग मान्य रखा है। इसका परिणाम यह हुआ कि उसके जन्य रागों में अनिवार्य रूप से प्रयुक्त होने वाले कई स्वर एसे पाये जाते है जिन्हें जनक थाटों में कोइ स्थान प्राप्त नहीं है। इतना ही नहीं, कई रागों के तो वादी स्वर एसे है जो उनके जनक थाट में कहीं नहीं है। इस प्रश्न का कोइ तर्कसंगत उत्तर प्राप्त नहीं होता कि जो स्वर मूल थाट में ही नहीं है वह जन्य रागों में कहां से, किस नियम से आ सकता है। कुछ उदाहरण देखें - कल्याण थाट के जन्य रागों में केदार, कामोद, हमीर इत्यादि का समावेश माना है। इन सभी में शुद्ध मध्यम का बहुत प्रयोग पाया जाता है। तीव्र मध्यम अल्प मात्रा में प्रयुक्त होता है और कोमल निषाद भी राग-रूप के निर्माण में काफी सहायक होता है। अब एक विचार आता है कि जिस कल्याण थाट में शुद्ध मध्यम और कोमल निषाद का कहीं नाम ही नहीं उसके जन्य रागों में ये स्वर कहां से आए और क्यों प्रयुक्त होते है। भूपाली राग भी इसी प्रकार का एक उदाहरण है। यह दोष सभी थाटों के रागों पर लागू होता है।

अतः दस थाटों में काफी अनियमितता और असमंजसता विद्यमान है क्योंकी थाट-पद्धति का आधार मेल-राग पद्धति ही रहा है अतः मेल-राग पद्धति के समकक्ष बहुत से दोष इस पद्धति में भी आ गए है।

1.2.7 समयाश्रित राग पद्धति

यह वर्गीकरण रागों के गायन समय पर आधारित है। रागों के नियत समय पर गाने-बजाने की प्रथा प्राचीन काल से ही प्रचलित है। प्रायः कभी विद्वानों ने अपने ग्रंथो में रागों के गायन समय को बताया है। रागों के मुख्यतः तीन वर्ग माने जातें है।

1. 'रे', 'ध' शुद्ध वाले राग
2. 'रे', 'ध' कोमल वाले राग
3. 'ग', 'नि' कोमल वाले राग

इन तीनों प्रकार के रागों का संबंध दिन तथा रात्रि के समय स्थापित करके दसों थाटों के रागों को वर्गीकृत किया गया है। इन वर्गीकरण में मध्यम स्वर का विशेष महत्व है जिसके आधार पर राग दिन तथा रात्रि के समय में विभाजित होते है तथा उनका गायन समय निश्चित किया जाता है। रागों का यह वर्गीकरण स्थूल रूप से किया गया है अतः यह अपूर्ण है।

1.2.8 पूर्व-उत्तर राग पद्धति

यह वर्गीकरण राग के वादी स्वर पर आधारित है। इसका संबंध भी रागों के गायन से है। जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के पूर्वांग में होता है वे पूर्वांग वादी राग कहलातें है, ऐसे राग प्रायः दिन के उत्तर भाग यानि बारह बचे दिन से बारह बजे रात्रि तक के समय मे गाया-बजाया जाता है।

1.2.9 स्वर संख्याश्रित पद्धति

रागों में प्रयुक्त होने वाले स्वरों की संख्या के आधार पर जो वर्गीकरण किया जाता है उसे स्वर संख्याश्रित पद्धति कहते है। रागों में प्रयुक्त होने वाले स्वर संख्या के अनुसार ये तीन प्रकार का होता है।

1. संपूर्ण राग - जिसमें सातों स्वरों का प्रयोग होता है
2. षाडव राग - जिसमें छः स्वरों का प्रयोग होता है
3. औडव राग - जिसमें पाँच स्वरों का प्रयोग होता है

रागों के आरोह अवरोह के आधार पर उपर्युक्त से 9 प्रकारों के उपभेद पाये होता है।

1. संपूर्ण-संपूर्ण राग
2. संपूर्ण-षाडव राग
3. संपूर्ण-औडव राग
4. षाडव-संपूर्ण राग
5. षाडव-षाडव राग
6. षाडव-औडव राग
7. औडव-संपूर्ण राग
8. औडव-षाडव राग
9. औडव-औडव राग

1.2.10 रागांग पद्धति

आजकल यह पद्धति सबसे अधिक प्रचलित है। इसके प्रवर्तक स्व.नारायण मोरेश्वर खरे है। इन्होंनें थाट-राग पद्धति की अपूर्णता और अवैज्ञानिकता को समझा। फलस्वरूप राग-वर्गीकरण को एक नवीन दिशा प्रदान करने के लिये एक नवीन राग-वर्गीकरण पद्धति को जन्म दिया। जिसे रागांग पद्धति कहा। इन्होंनें रागों में विशिष्ट संदर्भ लेकर एसी स्वर रचनाओं की खोज की जो स्वतंत्र है और जिनसे विशेष प्रकार

के भावों का स्पष्टिकरण होता है। इस प्रकार की रचनाएं राग रचना के समस्त तत्वों से परिपूर्ण है इसलिये उन्हें ‘‘राग’’ कहना उचित है। उन्होंनें स्वरूप के विचार से संपूर्ण रागों को छब्बीस प्रमुख राग में विभाजित किया। स्वतंत्र रागों के मूल नाम तो है ही इनके उत्पन्न रागों को ‘रागांग’ कहा। स्वतंत्र रागों और उनसे निकलने वाली रागांगो का वर्णन इन्होंने निम्न प्रकार से किया। [30]

1. भैरव - भैरव, कलिंगडा, जोगिया, गुणकी, गौरी, शिवमत, भैरव, रामकली, अहीर, प्रभात, मंगल, वैरागी, शोभावटी।
2. बिलावल - बिलावल, अल्हैया, सरपरदा, कुकूम, लच्छा, शुकल, यमनी, देवगौरी, जैत, सुखिया।
3. कल्याण - कल्याण, शुद्ध कल्याण, यमन, चन्द्रकांत, तीव्र, कल्याण, पहाडी, हेमकल्याण, जेतकल्याण।
4. खमाज - खमाज, झिंझोटी, तिलंग, गौड, खंभावती।
5. काफी - काफी, सिंधूरा, आनंद, भैरवी
6. पूर्वी - पूर्वी, परज, पूरिया धनाश्री
7. मारवा - मारवा, भटियार, पूरिया
8. तोडी - तोडी, गुर्जरी तोडी, छाया तोडी, मूलतानी
9. भैरवी - भैरवी, मालकौंस, भूपाली, सिंधु
10. आसावरी - आसावरी, जौनपुरी, गंधारी, देवगंधार, कोमल आसावरी, देशी
11. सारंग - वृंदावनी सारंग, मेघ, शुद्ध सारंग, मध्यमादि सारंग
12. धनाश्री - धनाश्री, भीमपलासी, धानी, पटदीप, प्रदीपिका, हंसकिंकिणी।
13. ललित - ललित, बसंत, पंचम, प्रभात, ललिता, गौरी
14. पीलू - पीलू, बरवा, बडदस
15. सोरठ - सोरठ, देस, तिलककामोद, जयजयवंती
16. विभास - विभास, रेवा, जैतश्री
17. नट - नट, गौडी
18. श्रीराग - श्री, रागेश्री, बहार, कौशिककान्हडा
19. बागेश्री - बागेश्री, रागेश्री
20. केदार - केदार नट, भवानी, केदार, कामोद
21. शंकरा - शंकरा, मालश्री, विदाग, हंसध्वनि

22. कान्हडा - दरबारी, अडाना, सुधराइ, शहाना, नायकी, गूंजी, कान्हडा, मल्हाड, हुसैनी कान्हडा, मुद्रिका, कौसी, आभोगी
23. मल्हार - मल्हार, रामदासी मल्हार, सूरमल्हार, गौडमल्हार, मेघमल्हार, नटमल्हार, चरजू की मल्हार, धूलिया मल्हार
24. हिंडोल - हिंडोली, सौहनी, भिन्नषडज, शुद्धसोहनी
25. भूपाली - भूपाली, देशकार, जयंत, जयंतकान्हडा
26. आसा - आसा, दुर्गा, भवानी

इस पद्धति में 'रागांग' की संख्या और अधिक बढाइ जा सकती है। यह पद्धति अन्य सभी पद्धति की उपेक्षा अधिक वैज्ञानिक और युक्तिपूर्ण है। इस पद्धति में स्वरूप साम्य का प्रयोग करने से वैज्ञानिकता एवं तार्किकता आ गई है। आजकल यह पद्धति ही वर्गीकरण की सर्वोत्तम पद्धति है।

1.2.11 षष्ट विलोमी पद्धति

इस पद्धति के निर्माणकर्ता श्री एम. ए. व्यास है। इस पद्धति का मूल सिद्धान्त यह है कि एक थाट से दूसरे विलोमी नवीन थाट को जन्म दिया जा सकता है। 'विलोमी' का तात्पर्य है कि एक थाट में प्रयुक्त स्वर यदि तीव्र है तो हम उसके विलोमी स्वर अर्थात कोमल स्वर का प्रयोग करेंगे।

यह वर्गीकरण सरल, सुग्राह्य, स्पष्ट सुबोध एवं शीघ्र स्मरण योग्य बहनाने कि दिशा में किया गया प्रयास दृष्टिगोचर होता है परंतु सहजता ही किसी वर्गीकरण की अंतिम कसौटी नहीं होती। यह राग का स्थूल रूप से किया गया वर्गीकरण है। इस पद्धति का आधार थाट-पद्धति है। अतः सम्बन्धित सभी दोष इसमें आ गए है।

संगीत सदैव परिवर्तनशील रहा है, लोकरूचि के अनुसार इसमें निरंतर परिवर्तन होता रहा है। अतः समय-समय पर विद्वानों के द्वारा राग-वर्गीकरण पर अपना मत प्रस्तुत करना स्वभाविक ही है।

अब प्रश्न उठता है कि कौन सी पद्धति राग-वर्गीकरण की दृष्टि से सबसे उपर्युक्त है तो कुल मिलाकर रागांग पद्धति में रागों का वर्गीकरण स्वरूप-साम्य के आधार पर किया गया है। फलस्वरूप यह वर्गीकरण तार्किक नियमों की दृष्टि से सबसे उपर्युक्त ठहरता हे, क्योंकि इसमें राग के आवश्यक रूप-स्वरूप-साम्य का शुरु से आखिर तक प्रयोग किया हुआ दिखाइ पडता है। इस पद्धति में राग के कला पक्ष और भाव पक्ष दोनों का विचार किया गया है। इस प्रकार यह पद्धति अपने समस्त गुणों के कारण राग-वर्गीकरण की समस्त पद्धतिओं में सर्वोत्तम ठहरती है।

1.3 रागों का समय सिद्धान्त

रागों का समय सिद्धांत भारतीय संगीत की अपनी मौलिक कल्पना है। संगीतज्ञों के बीच इस सिद्धान्त के लिये नारद मुनि से संबंधित एक किवदन्ती प्रचलित है - ''नारद जी एक बार संगीत मद में विचरते-विचरते गंधर्व लोक पहुँचे। सोचा था वहां चलकर गंधर्वों को अपनी कला का चमत्कार दिखाएंगें। किंतु देखा, वहां के सुंदर नर-नारी अंग-भंग की पीडा से कराहते पडे है। पुछने पर पता चला कि वे विभिन्न राग-रागिनियाँ है। मृत्युलोक में 'नारद' नाम का कोइ व्यक्ति उन्हें बेसमय गाया-बजाया करता है, इसी से उनकी यह दुर्दशा हो रही है। नारद जी का माथा ठनका। उन्हें अपनी भूल का ज्ञान हुआ। पुछा अब इसका उपचार क्या है? लोगों ने कहा की नारद जी उन्हें यथासंभव ही गाएं-बजाएं तो उनके अंग भंग पुनः ठीक हो जायेंगे। नारदजी ने वैसा ही किया और तब जाकर राग-रागिनियाँ पूर्ववत स्वस्थ हो सकी।''

प्राचीन से वर्तमान काल तक भारतीय संगीत में रागों का गायन अपने निर्धारित समय पर हीं होता आया है। जैसे भैरव राग प्रातः काल ही गाए या बजाए जाते है और मालकौंश केवल रात्रि को हीं। रागों का गायन समय अपने निर्धारित समय पर ही होता है ये बात हमारे संस्कारो में समायी हुइ है। प्राचीन रागों में तथा वर्तमान रागों में उलटफेर हो जाता है। जैसे राग भूपाली प्राचीन काल में सबेरे का राग था जबकि वर्तमान में यह रात्रि के प्रथम प्रहर में गाया-बजाया जाता है। प्राचीन काल में भूपाली राग में 'रे', 'ध' का कोमल प्रयोग होता था।

''मनिवर्ज्या तु भूपाली रि-धौ यत्र च कोमलौ।

गान्धारो दग्राहसंयुक्ता रिन्यासा गांशशोभिता।'' [31]

वर्तमान समय में इस राग में 'रे', 'ध' का शुद्ध प्रयोग किया जाता है।

संगीतज्ञ रागों के गायन-वादन ठीक समय पर करने के सिद्धान्त पर एक मत है। वर्तमान समय में विश्वविख्यात संगीतज्ञ पंडित भीमसेन जोशी के अनुसार ''क्या गुलाब को रात में विकसित किया जा सकता है? यदि नहीं तो हमारे प्रातः काल के राग इस काल को छोडकर अन्य काल में पूर्ण आभा के साथ कैसे खिल सकते है?'' [32]

भातखंडे जी ने भी कहा है की राग अपने नियम समय पर गाये जाने पर ही अधिक शोभनीय होता है।

''यथाकाले समारकधं गीतं भवति रंजकम्

अतः स्वरस्य नियमात रगोडपि नियमः कृतः।'' [33]

पंडित दामोदर का कथन है कि रागों को उनके नियत समय पर गाने से वे सुखप्रद होते है, किन्तु साथ ही इस बात का खण्डन करते हुए वे कहते है कि राजाज्ञा होने पर समय के नियम की उपेक्षा करके कोई भी राग गा लेना चाहिए।

''यथोक्त काल एवैते गेयाः पूर्व विद्यानतः।
राजाज्ञया सदा गेया नतु कालं विधरयेत।'' [34]

अतः इससे स्पष्ट होता है कि संगीतज्ञ पर अपने आश्रयदाता या श्रोताओं की हुकुमत चलती है।

राग गायन समय वैज्ञानिक सिद्धान्त न होकर यह सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक है। स्वरों का संबंध मानव मन से भी है हमारे मन का भाव सदैव एक सा नहीं रहता है। प्रातः सोकर उठने पर हम अपेक्षाकृत गंभीर मुद्रा में रहते है। जैसे दिन चढता जाता है, वातावरण में परिवर्तन होता है वैसे वैसे हमारे भाव, हमारा मूड बदलता रहता है। रात्रि का हमारा भाव वही नहीं रहता जो प्रातः रहता है। हमारे इन बदलते मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिये स्वर भी विभिन्न होते है। और जब ये उपर्युक्त स्वर मिल - जुलकर हमारे मनोभावों को एक रूप देते है तो वही रूप राग बन जाता है। राग से रस टपकता है, जब उसे वांछित स्वरों का अपेक्षित सहयोग तथा मूड मिल जाता है।

राग समय सिद्धान्त को आधुनिक काल में भातखंडे जी ने व्यवस्थित रूप देकर उसके महत्व से श्रोताओं तथा गायक-वादकों को परिचित कराया। इन्होंने स्वर और समय की दृष्टि रागों के तीन वर्ग मानकर कोमल तीव्र स्वरों के अनुसार विभाजन किया है -

''हिंदुस्थानीयरागाणां त्रयो वर्गोःसुनिश्चिताः।
स्वरविकृत्यधीनास्ते लक्ष्यलक्षण को विदेः।'' [35]

ये तीन वर्ग ये हे -

1. संधिप्रकाश राग अर्थात कोमल 'रे' तथा कोमल 'ध' वाले राग
2. शुद्ध 'रे' और शुद्ध 'ध' वाले राग तथा
3. कोमल 'ग' और कोमल 'नि' वाले राग।

भातखंडे जी ने ही रागों के समय निर्धारित करने में पूर्वराग तथा उत्तरराग [36] एवं उर्ध्वदर्शक स्वर [37] को भी एक नियम माना है।

अतः हम देखते है कि रागों का समय निर्धारित करने के मुख्य तीन नियम है -

1. पूर्व राग तथा उत्तर राग का नियम
2. संधिप्रकाश तथा उसके बाद गाये जाने वाले राग का नियम तथा
3. अध्वदर्शक स्वर का नियम

1.3.1 पूर्वराग तथा उत्तरराग का नियम

जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के पूर्वभाग अर्थात 'सा रे ग म' इन स्वरों में से होता है वे 'पूर्वांगवादी राग' कहे जाते है तथा इस राग का गायन समय प्रायः दिन के उत्तर भाग बारह बजे दिन से बारह बजे रात्रि तक के समय में होता है।

जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के उत्तरी भाग अर्थात 'प ध नि सां' इन स्वरों में से होता है वे 'उत्तरागंवादी राग' कहे जाते है तथा इस राग का गायन प्रायः दिन के पूर्व भाग यानि बारह बजे रात्रि से बारह बजे दिन तक के समय में होता है।

राग के वादी स्वर को जान लेने पर उस राग के गायन-वादन का समय ज्ञात हो जाता है। जैसे आसावरी राग का वादी स्वर धैवत अर्थात सप्तक का उत्तर स्वर है तो उसके गायन-वादन का स्वर भी प्रातः काल है। राग यमन का वादी स्वर गंधार है, जो कि सप्तक का पूर्व भाग का स्वर है, अतः यमन राग के गायन-वादन का समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। इसलिये यमन राग को 'पूर्वांगवादी राग' कहा जाता है और आसावरी राग को 'उत्तरांगवादी राग' कहा जाता है।

उपर्युक्त नियम में अपवाद के मध्यम तथा पंचम स्वर आता है। जैसे राग भैरवी में मध्यम वादी स्वर है जो कि सप्तक पूर्वांग का स्वर है, फिर भी इसका गायन समय प्रातः काल बताया गया है।इसी प्रकार राग कामोद का वादी स्वर पंचम है जो कि सप्तक के उत्तर भाग में है फिर भी इसका गायन समय रात्रि का प्रथम प्रहर बताया गया है।

अतः यह कहा जा सकता है कि जिन रागों का वादी स्वर सा रे ग म प में से है तो उसका गायन समय बारह बजे दिन से बारह बजे रात तक होता है तथा जिन रागों का वादी स्वर म पमध नि सां में से है तो उसका गायन समय बारह बजे रात से बारह बजे दिन तक होता है।

1.3.2 संधिप्रकाश राग तथा उसके बाद गाये जाने वाले राग का नियम

भारतीय संगीत में रागों का समय निर्धारित करने के लिये दूसरा नियम संधि-प्रकाश तथा उसके बाद गाये जाने वाले रागों का है। इस नियम में रागों को तीन वर्ग में बाँटा गया है -

(क) संधिप्रकाश राग या कोमल 'रे' 'ध' वाले राग

(ख) 'रे' 'ध' शुद्ध वाले राग

(ग) 'ग' 'नि' कोमल वाले राग

(क) संधिप्रकाश वाले राग या कोमल 'रे' 'ध' वाले राग

दिन और रात्रि की संधि अर्थात मेल होने के समय को संधि काल कहते है। प्रातः सुर्योदय से कुछ पहले और शाम को सुर्यास्त के कुछ पहले का समय एसा होता है जिसे न तो दिन ही कह सकते है और न रात ही। इसी समय को संधिप्रकाश का बेला कहा गया है और इस बेला में जो राग गाए-बजाए जाते है उन्हें ही 'संधिप्रकाश राग' कहते है। जैसे - भैरव, कलिंगडा, भैरवी, पूर्वी, मारवा इत्यादि। संधिप्रकाश राग का समय दिन-रात में दो बार आता है।

1. प्रातः कालीन संधिप्रकाश राग और
2. सायंकालीन संधिप्रकाश राग

संधिप्रकाश राग में मध्यम स्वर बडे महत्व के है। प्रातः कालीन संधिप्रकाश रागों में अधिकतर मध्यम शुद्ध और सायंकालीन संधिप्रकाश रागों में अधिकतर तीव्र मध्यम का प्रयोग किया जाता है। जैसे भैरव और कलिंगडा प्रातः कालीन संधिप्रकाश राग है, इनमें शुद्ध मध्यम का प्रयोग है तथा पूर्वी और मारवा सायंकालीन संधिप्रकाश राग है, इनमें तीव्र मध्यम का प्रयोग है। संधिप्रकाश का समय सुबह तथा शाम को चार बजे से सात बजे तक का माना गया है।

संधिप्रकाश रागों में धैवत शुद्ध भी हो सकता है लेकिन ऋषभ कोमल तथा गंधार और निषाद अधिकतर शुद्ध ही प्रयोग में प्राप्त होता है। यद्यपि कोइ-कोइ संधिप्रकाश राग इस निमय का अपवाद भी होता है जैसे - भैरवी।

(ख) 'रे' 'ध' शुद्ध वाले राग

'रे' 'ध' शुद्ध वाले रागों के गायन-वादन का समय संधिप्रकाश वाले रागों अर्थात 'रे' 'ध' वाले रागों के बाद आता है। इस वर्ग के रागों का गायन-वादन समय भी चौबीस घंटों में दो बार आता है। इसमें कल्याण, बिलावल और खमाज थाट के राग गाए-बजाए जाते है।

प्रातः कालीन संधिप्रकाश रागों के बाद गाए-बजाए जाने वाले रागों में दिन चढने के साथ ही शुद्ध 'रे' तथा शुद्ध 'ध' की प्रधानता बढती जाती है। इस प्रकार प्रातः सात बजे से दस बजे तक और शाम को सात बजे से दस बजे तक दूसरे वर्ग के अर्थात 'रे' 'ध' शुद्ध वाले राग का गायन समय आ जाता है।

इस प्रकार सुबह सात बजे से दस बजे तक गाए-बजाए जाने वाले रागों में शुद्ध मध्यम की प्रधानता रहती है जैसे बिलावल। और शाम को सात बजे से दस बजे तक गाए-बजाए जाने वाले रागों में तीव्र मध्यम की प्रधानता रहती है जैसे यमन इत्यादि।

(ग) कोमल 'ग' 'नि' वाले राग

'रे' 'ध' शुद्ध स्वर वाले रागों के बाद कोमल 'ग' और 'नि' स्वर लगने वाले रागों का वर्ग आता है। इस वर्ग के रागों को 'रे' और 'ध' शुद्ध स्वर वाले राग के बाद गाया-बजाया जाता है। इन रागों का समय दस बजे से चार बजे तक माना जाता है। इस वर्ग के रागों कि यह विशेषता होती है कि उसमें 'ग' और नि स्वर कोमल लगना चाहिए। इसलिये इस वर्ग के रागों के अन्तर्गत काफी, आसावरी, भैरवी और तोडी थाटों के राग आते है। कुछ राग ऐसे अवश्य है जो इस नियम के अपवाद है।

इस वर्ग के रागों को दूसरे वर्ग के रागों के समय में गाया और बजाया जाता है। जैसे आसावरी, भैरवी, तोडी आदि 'ग' और 'नि' कोमल स्वर वाले वर्ग के राग है परन्तु इनको सुबह 9 बजे के पहले ही गा लिया जाता है जबकि उपर्युक्त मत के अनुसार इन्हें दस बजे के बाद ही गाया जाना चाहिए। कुछ राग तो ऐसे है जिनका कुछ समय ही नहीं माना जाता जैसे भैरवी, पीलू इत्यादि। भैरवी का गायन किसी भी समय कार्यक्रम के समापन पर गाया जाता है। चाहे समय कोइ भी रहे। पिलू तो रात दस बजे तक गाया-बजाया जाता है।

1.3.3 अध्वदर्शक स्वर का नियम

उत्तर भारतीय संगीत पद्धति में रागों के गाने-बजाने के समय की दृष्टि से मध्यम स्वर का विशेष महत्व है। मध्यम स्वर रागों के समय विभाजन में पथ प्रदर्शक का कार्य करता है इसलिये इसे 'अध्वदर्शक स्वर' कहा जाता है। सुबह के समय शुद्ध मध्यम का साम्राज्य रहता है तथा शाम के समय तीव्र मध्यम का

साम्राज्य रहता है। इस प्रकार तीव्र मध्यम अधिकतर शाम की सूचना देता है और कोमल मध्यम प्रातः काल की। शाम को मुलतानी, पूर्वी तथा श्री इत्यादि रागों से तीव्र मध्यम का प्रयोग शुरु होता है और यह प्रयोग लगभग आधी रात तक लगातार चलता रहता है, इसके पश्चात रात्रि के दूसरे प्रहर में जब बिहाग गाने का समय आता है तो धीरे-धीरे शुद्ध मध्यम का प्रयोग आरंभ हो जाता है।

प्रातः कालीन संधिप्रकाश रागों से पहले शुद्ध मध्यम वाले राग भैरव, कलिंगडा इत्यादि गाकर फिर दोनों मध्यम वाले राग आ जाते है। किन्तु इसमें शुद्ध मध्यम का महत्व अधिक रहता है, जैसे रामकली और ललित इत्यादि। इसके पश्चात जब 'रे' 'ध' शुद्ध वाले रागों को गाने का समय आता है तब भी शुद्ध मध्यम की ही प्रबलता रहती है जैसे बिलावल आदि। फिर कोमल गंधार वाले रागों का समय आता है, तो फिर दोनो मध्यम का प्रयोग आरंभ हो जाता है। इस प्रकार तीसरे प्रहर तक शुद्ध और तीव्र दोनों प्रकार के मध्यमों का प्रयोग चलता है।

शाम के संधिप्रकाश राग में तीव्र मध्यम का महत्व अधिक रहता है जैसे मारवा इत्यादि। इसके पश्चात 'रे' 'ध' शुद्ध वाले राग आते है जैसे कल्याण, हमीर, केदार आदि। तो इनके तीव्र मध्यम की ही विशेष प्रधानता रहती है। अंत में जाकर जब कोमल 'ग' वाले रागों के गाने का समय आता है, शुद्ध मध्यम वाले रागों की फिर प्रधानता हो जाती है जैसे बागेश्री, काफी, मालकौस इत्यादि।

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि मध्यम स्वर का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। केवल मध्यम के अंतर से गायन समय में परिवर्तन दिखने लगता है। भैरव प्रातः काल के प्रथम प्रहर में गाया जाता है किन्तु इसके स्वरों में यदि शुद्ध मध्यम की जगह तीव्र मध्यम कर दिया जाए तो सायंकाल में गायेजाने वाला पूर्वी राग हो जाएगा। प्रातः काल गाए जाने वाले बिलावल राग के स्वरों में सिर्फ शुद्ध मध्यम की जगह तीव्र मध्यम करने से रात्रि को गाया जाने वाला राग यमन हो जाता है। इस प्रकार केलव मध्यम का स्वरूप बदल देने से प्रातः काल के स्थान पर ये राग रात्रि में गेय हो जाता है। यद्यपि इस नियम के कुछ अपवाद भी है, किन्तु बहुमत इसी और है।

रागों का समय निर्धारित करने मे उपर्युक्त नियम को पूर्ण नही कहा जा सकता। सभी नियमों में बहुत से रागों का अपवाद रह जाता है किन्तु बहुमत इसी नियम की और है।

आधुनिक राग व्यवस्था को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि रागों का गायन निश्चित समय पर होने से पूर्ण असर श्रोताओं पर होता है। प्रातः काल का राग भैरव, कलिंगडा या जोगिया को दिन में अथवा सायंकाल में गाने पर इसके सौन्दर्य-वृद्धि में बाधा पडती है। उसी प्रकार मध्याह्न में गाए-बजाए जाने वाले वृंदावनी सारंग अथवा मधमाद सारंग को रात्रि में गाने से श्रोताओं में हास्यास्पद धरन होगी।

रागों के लिये निश्चित किये गए समय का पालन आधुनिक साधनों जैसे रेडियो, टेलीविजन पर भी कुछ सीमा तक किया जाता है, उसी प्रकार कोइ भी प्रतिष्ठित गायक या वादक उपने सुबह के मंच प्रदर्शन के लिये सुबह के राग जैसे तोडी या उसके प्रकार ललित, बिलावल या उसके प्रकार आदि प्रातः कालीन रागों को हीं चुनेगा न कि रात्रि के समय गाए बजाए जाने वाले यमन, दरबारी या मालकौस आदि रागों को।

यह हमारे संस्कार में इतना समाया हुआ है कि आज का श्रोता वर्ग भी रागों के गायन समय से परिचित है। अतः उसे सुनने में भी वे ही राग अच्छे लगते है, जो वह उस समय में सुनने के आदि हो। अतः राग की रंजकता को ध्यान में रखते हुए यह उचित ही है कि रागों को उनके नियत समय पर हीं गाया-बजाया जाए।

1.4 राग एवं ऋतु

संगीत में रागों के समय सिद्धान्त के अन्तर्गत ही ऋतु सिद्धान्त भी अपना विशेष महत्व रखता है। संगीतशास्त्र में भी छः ऋतुओं का विधान किया गया है। यह छः ऋतुएं निम्न है -

1. बसन्त
2. ग्रीष्म
3. वर्षा
4. हेमन्त
5. शरद
6. शिशिर

यह ऋतुएं दो-दो मास की अवधि के पश्चात आती है और अपना रंग एवं प्रभाव दिखाकर चली जाती है।

मानव प्रकृति भी हर ऋतु और हर समय में बदलती रहती है। राग चुँकि मानवीय भावना है, इसलिये विभिन्न रूप में हर ऋतु और हर समय में मानव को आनन्द प्रदान करता है। बसन्त ऋतु में चारों ओर हरियाली ही हरियाली दृष्टिगोचर होती है। बसंत में जो फूल प्रफुल्लित होते है वह ग्रीष्म की तपन एवं जलन से मुरझा जाते है। जड एवं चेतन में भी घबराहट उत्पन्न हो जाती है। मेघ जड और चेतन की घबराहट और मुरझाए हुए फूल और पत्तों को नवजीवन अर्पित करता है और धरती की प्यास को शांत करता है। पुनः आंधी के झोंको से वृक्ष पत्तों से रहित हो जाते है, फूल मुरझा गिर पडते है और हेमन्त ऋतु के पश्चात ठण्डी एवं शीत पवन सबको आनन्द प्रदान करती है।

शिशिर ऋतु को ठिठुराए हुए जड औऱ चेतन पर बसंत में निखार आता है। मन में उमंग उत्पन्न होती है और तरंगे उठती है। चन्दन के समान शीतल सुखद गंधवाली हवा बहती है। आम्रवृक्षों से गिरते हुए नन्हें-नन्हें पुष्पों का पराग कुंकुभ चूर्ण की वर्षा सा प्रतीत होता है। कोकिल के पंचम स्वर से अमराइयां पुख्त हो उठती है। आम्रमंजरियों के पैने बाण लेकर अपने धनुष पर भौरों की प्रातों की डोरी चढाकर रसिकजनों को बेधने के लिये आता है। इस ऋतु की अगवानी के लिये सारे वृक्ष फूलों से भर जाते है। जल में कमल खिल जाते है। वायु में सुगन्ध आ जाती है। शाम सुहानी लगती है और दिन लुभावने हो जाते है। इस ऋतु के वातावरण को अनुभव करने से जो भाव संगीतज्ञों के मन पर उत्पन्न होता है वह इस ऋतु के राग बसंत तथा बहार आदि स्वरावलियों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है।

बसन्त की हरियाली के पश्चात ग्रीष्म ऋतु आती है और फूल मुरझाने आरम्भ हो जातै है। ग्रीष्म ऋतु अपना यौवन दिखाती है। सूर्य देवता अग्नि वर्षा करते है। जड औऱ चेतन घबरा उठते है, धरती पर स्थित प्रत्येक वस्तु तप जाती है। हानिकारक किटाणुंओं का नाश हो जाता है। यह ऋतु प्राणिमात्र में अपनी-अपनी व्याकुलता के कारण सौजन्य उत्पन्न कर देने वाली है। इस ऋतु के रागों में दीपक राग बहुत हीं प्रसिद्ध है। इस राग की स्वरावली द्वारा संगीतज्ञ अपने हृदय के निदाध को प्रकट करता है।

दो मास की तपन और जलन के बाद वर्षो का आगमन हुआ और प्यासे फूल, पत्ते और धरती को स्वाति की बूंदें प्राप्त होती है। ग्रीष्म के बाद मेघ राग इन्द्र देवता का आह्वान करता हुआ स्वाति रूप में जल धाराएं प्रदान करता है। आकाश में बादल, बादलों में गरज और चमक, जल रूपी अमृत धाराएं तपतहिम को शान्ति और स्थिरता प्रदान करती है। प्यासी धरती को जल मिलता है, वनस्पति फिर से हरी-भरी दिख पडती है। चहुँ ओर आनन्द का आभास होता है। बादलों के आगमन से भौरों का रोम-रोम खिल उठता है। वे अपनी कुहुक और नृत्य द्वारा आनन्दोत्सव मनाते है जैसे त्रिविध ताप से जलते हुए गृहस्त भक्तों के आगमन से प्रसन्न होते है। संभोगियों के लिये यह ऋतु जितनी सुखद और रमणीक है वियोगियों के लिये उतनी ही दाहक और असह्य भी। मेघ की गरज, बिजली की चमक आदि को देखकर संगीतज्ञ अपनी हृदयगत भावनाओं को मेघ, मल्हार के प्रकारों आदि रागों के द्वारा व्यक्त करते है। इन रागों की स्वरावलियों में विरहीजनों की छटपटाहट अकुलाहट आदि की भावना साकार हो जाती है। वर्षा रूक जाती है। आँधी और तुफान के आक्रमणों से वृक्ष के पत्ते झड जाते है, खिले हुए फूल मुरझाकर गिर जाते है। मानव हृदय की उदासीनता का भास होता है और वह श्री राग का गायन कर मन को धैर्य प्रदान करता है। इसे हेमन्त ऋतु कहते है।

ठण्डी वायु मन को बहलाती है और हर प्रकार का रंजन प्रस्तुत करती है। मानव, पशु, पक्षी, वनस्पति इत्यादि सभी को ठंढक मिलती है उसे शरद ऋतु कहते है। इस रंजकावस्था की अभिव्यक्ति मानव मालकौस राग के द्वारा करता है। मालकौस के गांधार, धैवत तथा निषाद कोमल स्वर और मध्यम का वादित्व शान्त रस संचार करता है जैसे कि खोइ हुई वस्तु पुनः प्राप्त होने से प्रसन्नता और शांति का भास होता है। इसी प्रकार शरद ऋतु की ठंढक अपने तिव्र रूप में शिशिर को पुनः जन्म देती है और जड एवं चेतन सर्दी के मारे कांपने लगते है यानी जम जाते है और मानव शरीर में रक्त प्रवाह गति मंद हो जाती है। उसी समय भैरव वीर रस का संचार करता है, रक्त प्रवाह तेज हो जाता है और सांसारिक जीव एवं जन्तु कडाके की सर्दी से निर्मय होकर कार्य करने लगता है। इसके पश्चात ऋतुराज बसंत एवं ऋतुओं का आवागमन चक्र इसी प्रकार चलता रहता है।

प्राचीन काल से ही संगीतज्ञों ने रागों का सम्बन्ध ऋतुओं से स्थापित किया है। शारंगदेव ने राग ऋतु सम्बन्ध इस प्रकार बताया है -

षडज ग्राम - वर्षा ऋतु में [38]

भिन्न कौशिक - शिशिर ऋतु में [39]

गौड पंचम - ग्रीष्म ऋतु में [40]

भिन्न षडज - हेमन्त ऋतु में [41]

हिंडोल - बसंत ऋतु में [42]

रगन्तो - शरद ऋतु में [43]

इसके अतिरिक्त रागों का गायन समय का निर्देश भी संगीत रत्नाकर में किया गया है। जिससे विदित होता है की प्राचीन काल के ग्रंथकारों को रागों को उनके नियत समय पर गाना-बजाना मंजूर था।

संगीत रत्नाकर में दिन तथा रात्रि के भिन्न-भिन्न समय में गाए या बजाए जाने वाले रागों का तथा भिन्न-भिन्न ऋतुओं में गाए जाने वाले रागों का उल्लेख है।

राग का प्रभाव यह है कि दुष्ट और सन्त, छोटा और बडा, वृद्ध अथवा युवा जो सुने वह आनंद को प्राप्त करता है। संगीत विद्वान फकिरुल्ला ने षट् ऋतुओं का वर्णन करने के बाद उनमें राग-रागिनियों एवं पुत्रों का वर्णन किया है। बसन्त ऋतु में हिंडोल राग तथा इसकी रागिनियों एवं पुत्रों को गाया जाता है। ग्रीष्म ऋतु का राग दीपक है। पावस का राग मेघ है और शरद ऋतु का श्री राग है। हेमन्त का मालकौस तथा शिशिर का भैरव राग है

फकिरुल्ला का राग ऋतु सिद्धांत से आधुनिक ऋतु सिद्धान्त भी कुछ मिलता-जुलता है।

हिंदी के भक्तकवि ने भी अपने ऋतु-सम्बन्धी काव्य पर ऋतु विशेष में गाए जाने वाले रागों का उल्लेख किया है।

पंडित दामोदर ने विभिन्न मत जैसे शिवमत, हनुमानमत आदि प्रस्तुत किए है। इस वर्णन के साथ इन्होंने रागों का समय तथा ऋतुओं से सम्बन्ध स्थापित किया है।

''श्री रागो रागिणी युक्तः शिशिर गीयते बुधैः

बसन्त सहायस्तु बसन्ततौ प्रगीयते।'' [44]

अर्थात श्री राग तथा इसकी रागिनियों को पंडितजन शिशिर ऋतु में गाते है। बसन्त तथा इसका परिवार वसंत ऋतु में। इसी प्रकार भैरव तथा उसका परिवार ग्रीष्म ऋतु में गाया जाता है। इस प्रकार राग तथा इसके परिवार का सम्बन्ध विभिन्न ऋतुओं के साथ जोडा गया है। अंत में दामोदर पंडित कहते है -

''यथेच्छाया तवा गाताव्याः सर्वतुषु सुखप्रदाः।'' [45]

अर्थात अपनी इच्छा से गाने से कोइ भी राग सभी ऋतुओं में सुख प्रदान करेगा।

इनके उपर्युक्त कथनों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय रागों का समय सिद्धान्त एवं ऋतु सिद्धन्त प्रचलित था, किन्तु उसके नियम इतने कठोर नहीं थे, कि इनका उल्लंघन न किया जा सके।

संगीत के इतिहास में जितने भी ग्रंथकार हुए, प्रायः सभी ने राग के समय तथा ऋतु सिद्धान्त को स्वीकार किया है। पं अहोबल ने अपनी संगीत पारिजात में रागों के समय चक्र का उल्लेख किया है। इन्होंने अपने रागों का वर्णन करते समय राग के गायन समय का तथा इनका ऋतुओं से सम्बन्ध स्थापित किया है।

मेघ मल्हार के वर्णन में -

''षड्जादिमूर्छनोपेतः षड्जत्रयसमन्वितः

ग-नि-हीनोडपि मल्लारो वर्षासु सुखदायकः।'' [46]

या

''यतो वर्षासु गेयोडयं मेघ इत्यादि कीर्तितः।

अकालरागगानेन जातदोषं हरव्ययमं।'' [47]

इस प्रकार मेघ को वर्षा ऋतु के साथ जोडा गया है।

वर्तमान संगीत में भी मल्हार तथा इसके प्रकारों को वर्षा ऋतु में विशेषतः गाया जाता है। यह नही कि वर्षा ऋतु के अतिरिक्त इनका गायन नहीं हो सकता किन्तु वर्षा ऋतु में मल्हारों का सौन्दर्य विशेष रूप से निखरता है। आधुनिक समय में मल्हारों को वर्षा ऋतु के अतिरिक्त रात्रि में गाया बजाया जाता है। [48]

आधुनिक ग्रंथकार विमलाकान्त राय चौधरी ने अपने ग्रंथ राग व्याकरण में राग और ऋतु का सम्बन्ध स्थापित किया है - [49]

दीपक - ग्रीष्म ऋतु के लिये

मेघ - वर्षा ऋतु के लिये

भैरव - शरद ऋतु के लिये

मालकौस - शिशिर ऋतु के लिये

श्री - हेमन्त ऋतु के लिये

हिन्डोल - बसंत ऋतु के लिये

आधुनिक संगीत में राग ऋतु सिद्धान्त का विशेष महत्व नहीं रहा है। किन्तु ऋतुओं में वसंत तथा वर्षा राग के गायन तथा वादन की दृष्टि से महत्वपूर्ण ऋतु है जिनके अनुसार आधुनिक संगीत में राग गायन प्रचलित है।

ऋतुओं के साथ रागों के सम्बन्ध को नकारा नहीं जा सकता। गरजते हुए मेघ तथा उमडी हुई घटा को देखकर किस संगीतज्ञ का मन न होगा कि वो मल्हार के स्वर न छेडे। मल्हार तथा उसके प्रकारों को वर्षा ऋतु में विशेष रूप से किसी भी समय गाया बजाया जाता हे। मल्हार के लिये ''वर्षासु सुखदायक'' कहा गया है। इन रागों के गीतों में भी प्रायः ऋतु का वर्णन होता है जो और भी आनंददायक होता है।

प्रकृति में सुदूर तक फैले भिन्न-भिन्न फूलों के सौन्दर्य को देखकर बरबस ही गले में बसंत, बहार, हिंडोल, बसंतबहार इत्यादि रागों की स्वरावली फूट पडती है। बसंत, बहार, बसंतबहार ये राग मुख्यतः बसंत ऋतु में गाये जाते है। इन रागों के लिये ''बसंततौ सुखप्रद'' कहा गया है।

वास्तविक दृष्टि से रागों का समय सिद्धान्त तथा ऋतु सिद्धान्त राग गायन वादन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसमें रागों के गाने-बजाने का समय निश्चित होने से गायक या वादक समय की परीधि

में रहता है अन्यथा कोइ भी गायक कोइ भी राग किसी भी समय में गाता या बजाता तथा रागों में किसी प्रकार का क्रम नहीं रहता।

अतः हम यह कह सकते है की रागों को अपने नियत समय पर या विशेष ऋतु में गाना पूर्णतः संस्कारों तथा हमारी संस्कृति का परिणाम है।

संदर्भ सूची

1. वर्मा रामचन्द्र, मानक हिंदी कोश, चौथा खंड, पृ. -491
2. कुमार डो.अरविन्द, अभिषेक संगीत पल्लव, सारस्वत प्रकाशन, पृ.21
3. कश्यप संगीत रत्नाकर, कल्लिनाथ कृत टीका राग विवेकाध्यान पृ.7 तथा मतंग बृहद्देशी पृ.81
4. मतंग बृदहद्देशी पृ.81, श्लोक 280 तथा भरत कोष पृ. 921
5. वही पृ. 81, श्लोक 281 तथा वही पृ. 921
6. शुभंकर भरत - कोश पृ. 922
7. पाश्र्वदेव, संगीत समयसार प्रथम अध्याय पृ.19
8. शर्मा, प्रेमलता (सं) संगीतराग पृ.24
9. श्रीकंठ, रस कौमुदी पृ.13
10. सोमनाथ राग विबोध, चतुर्थ विवेक, पृ.101
11. व्यंकटमुखी, चतुर्दन्डि प्रकाशिका, राग प्रकरण पृ.56
12. पं. अहोबल, संगीत पारिजात पृ.97
13. भातखंडे, पं विष्णुनारायण भातखंडे संगीत शास्त्र भाग एक, पृ.21
14. देवधर, राग बोध भाग 1, पृ. 16
15. परंजपे डो. शरदचन्द्र श्रीधर, संगीत बपोध पृ.41-45
16. मदन पन्नालाल, संगीत शास्त्र विज्ञान पृ. 58
17. दास, श्याम सुन्दर (सं), हिन्दी शब्द सागर भाग 8, पृ. 41-15
18. वर्मा रामचन्द्र, मानक हिंदी कोश, चौथा खंड, पृ. 491
19. बृहस्पति, आचार्य भरत का संगीत सिद्धान्त, पृ.74
20. वही पृ. 75
21. वही पृ 74
22. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर भाग-2, पृ. 3
23. संगीतमकरंद पृ.23 श्लोक 52-53
24. शर्मा, भगवत शरण, भारतीय इतिहास में संगीत पृ.153
25. पाठक, पं जगदीश नारायण, संगीतशास्त्र प्रवीण पृ. 78

26. वही पृ.90
27. परांजपे डो. शरदचन्द्र श्रीधर, संगीत बोध, पृ.64
28. मदन डो. पन्नालाल, संगीत शास्त्र विज्ञान पृ. 72
29. वही पृ.73
30. साद संतोष, राग वर्गीकरण का इतिहास, संगीत जुलाइ 1987 पृ. 10
31. संगीत पारिजात पृ. 145
32. नाडकर्णी मोहन, भीमसेन जोशी, व्यक्ति और संगीत पृ. 54
33. क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-5, पृ. 31
34. संगीत दर्पण, पृ. 76, श्लोक-26
35. बसंत, संगीत विशारद पृ.135
36. क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-3 पृ.15
37. बन्दोपध्याय श्रीपद, संगीत भास्य पृ. 9
38. संगीत रत्नाकर द्वितय रा.वि.आ. श्लोक 29, पृ. 37
39. वही द्वितीय राग वि.आ. श्लोक-39, पृ.37
40. वही श्लोक 44, पृ. 41
41. वही श्लोक 81, पृ. 71
42. वही श्लोक 95, पृ. 81
43. वही श्लोक 110, पृ.95
44. संगीत दर्पण, श्लोक 27, पृ.77
45. वही श्लोक 30
46. संगीत पारिजात श्लोक 360, पृ.108
47. वही श्लोक 361, पृ. 109
48. शाह जयसुरतलाल, त्रि. मल्हार के प्रकार पृ. 23
49. चौधरी विमलकान्त राय व्यकरण पृ. 7